काशी मरणान्मुक्ति मेरी दृष्टि में

डॉ.भगवतीशरण मिश्र

502 पृष्ठों में विस्तृत इस महाग्रन्थ के आद्यन्त पठन के पश्चात् यह उद्घोषित करने को बाध्य होना पड़ता है कि कई दृष्टियों से यह औपन्यासिक कृति हिन्दी भाषा एवं साहित्य के सिर का मुकुटमणि है। उपन्यास लेखन की यह विधि अन्तर्मन को एक अप्रतिम आनन्द से परिपूरित कर गई। निश्चय ही कई अर्थों में यह हिन्दी ही नहीं किसी भी भाषा की सर्वश्रेष्ठ कृति के पद पर सुशोभित होने की सम्पूर्ण योग्यता रखती है।

उपन्यास के कई स्वरूप अब तक आ चुके हैं, विशेष कर हिन्दी उपन्यास के। यथा सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, कल्पनाधारित, यथार्थाग्रही, आंचलिक आदि। यह औपन्यासिक प्रस्तुति उपर्युक्त किसी श्रेणी में नहीं आती फिर भी यह उपन्यास है और जैसा कि इंगित किया गया एक सर्वभाषिक सर्वश्रेष्ठ उपन्यास। इस कृति को अगर किसी परिधि में बांधने की आवश्यकता ही है तो इसे आध्यात्मिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है।

निर्विवाद, औपन्यासिकता अपने श्रेष्ठतम स्वरूप में इस कृति में अवतरित हुई है। एक सर्वथा भिन्न शिल्प–प्रयोग विस्मय के साथ–साथ लेखकीय क्षमता के प्रति एक आदर–भाव को पाठक–मन में सृष्ट करता है।

इस कृति का उद्देश्य भले ही दीन–हीन, दलित, उपेक्षित, घृणित, अश्पृश्य को महिमा–मंडित ही नहीं सर्वथा पूजनीय एवं मानीय बनाने की हो किन्तु यह मानना पड़ेगा कि कृति के भाषिक सौन्दर्य एवं कथ्य की प्रवहमानता इसे शिखरस्थ करने में पांक्तेय हैं। सब कुछ होते हुए भी कृति में सायसता कहीं नहीं है, क्लिष्टतम भाषिक प्रयोग भी जो सर्वत्र उपलब्ध हैं अनायास हैं। वर्डस्वर्थ की पंक्तियां सहसा मस्तिष्क–पटल पर खचित हो आती हैं––पोएट्री इज़ द स्पॉटेनियस ओवर फ्लो ऑफ.....। भले ही हस्तस्थ कृति काव्य नहीं है किन्तु हर श्रेष्ठ कृति काव्य ही होती है। संस्कृत में पद्य–गद्य का विभाजन नहीं, साहित्य मात्र काव्य है। हां औपन्यासिक शिल्प एवं भाषा की चर्चा के समय अगर कोई एकमात्र कृति दृष्टि में आती है

तो वह है संस्कृत में ही लिखित वाणभट्ट की 'कादम्बरी'; अन्तर इतना ही कि चार–चार, पांच–पांच या इनसे भी अधिक पंक्तियों में विस्तृत वाक्य कादम्बरी के शिल्पगत उत्कृष्टता के आधार हैं तो इस कृति के लघु ही नहीं लघुतम वाक्य भी पाठक को विस्मय–विमुग्ध करने में समर्थ है।

मैं कृति की विषय–वस्तु की ओर इंगित कर चुका हूं लेकिन वह वहीं तक सीमित नहीं हैं। यह निस्संदेह लेखक की आध्यात्मिक प्रतिभा का विभिन्न रूपों में प्रस्फुटन है। सदाशिव के प्रति उसकी गहनतम निष्ठा कृति में सर्वत्र द्रष्टव्य एवं व्याप्त है।

पुस्तक के प्रस्तुतिकरण का विधान चमत्कारी एवं पाठक के लिए सर्वथा अकल्पित है। हर अध्याय का आरम्भ बाबा विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग अथवा उनके अन्य स्वरूपों के उत्कृष्ट उत्किरण से होता है। अनेक ऐसी समर्थ अभिव्यक्तियों में मात्र एक को उद्धृत करना पर्याप्त होगा––

''मैं शिव ही परम आनंदरूपिणी आद्यशक्ति के साथ एकरूप हो पंच महाभूतों का सृजन करता हूं। पुरूष एवं प्रकृति वाला जगत् मुझसे ही उत्पन्न होता है।''

''पृथ्वी, जल, आकाश, तेज और वायु मुझ अज्ञेय, अविकारी, चैतन्य से उत्पन्न होते हैं। मेरे ही परम चैतन्य से सृष्टि, स्थिति और संहार संचालित होते हैं।''

लेखक की गहन आध्यात्मिकता एवं महाकाल के प्रति श्रद्धाभाव के अतिरिक्त इस कृति को अनुपमेय बनाने का जो मूल तत्व है अर्थात् इसके भाषिक सौन्दर्य की पराकाष्ठा, उसका कोई उदाहरण नहीं देना उसके प्रति अन्याय के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा––

''स्वयं की मनोदशा के व्यापार में महा अब न केवल खंडित अपितु स्वयं से भी लज्जित होने लगा था। एक अर्थविहीन क्रिया जैसे उसकी संपूर्ण दिव्यता को ग्रसने लगी थी। अपने चैतन्य अस्तित्व से वंचित हो अब वह कबीर के संग बिताई घड़ियों के आनंद को खोने लगा था एवं कबीर थे कि अब दिन–प्रतिदिन कठोर होते जा रहे थे। निर्गुण एवं सगुण के द्वंद्व में महा का अंतर अब सुप्त हो चला था।''

उपन्यास के प्रमुख पात्र 'महा' को जो महानता लेखक ने प्रदान की हो, वह स्वयं पाठकों के अभिनन्दन का सर्वविध अधिकारी है। इन्हीं पंक्तियों के साथ मैं लेखक के लिए अपनी अनन्त सदिच्छाएं संप्रेषित करता हूं।

साहित्यकार एवं पूर्व आई.ए.एस.
जी.एच.–13/805,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली–87
मो.–9871219732